महेन्द्र तिवारी

दिल्ली

तूफान एक्सप्रेस

अविनाश तब सेना में नया नया भर्ती हुआ एक युवा और अविवाहित जवान था। खाकी वर्दी पहनने का गर्व उसके चेहरे पर साफ झलकता था। वह वर्दी उसके लिए केवल नौकरी का प्रतीक नहीं थी, बल्कि उसके जीवन का सबसे बड़ा सम्मान थी। जिस दिन उसने पहली बार वर्दी पहनी थी, उस दिन उसके छोटे से गांव में मानो दीपावली उतर आई थी। माता पिता की आंखों में गर्व था, पड़ोसियों की जुबान पर शुभकामनाएं थीं और गांव के बच्चों की नजरों में वह किसी नायक से कम नहीं था। लेकिन सेना का जीवन जितना गौरवपूर्ण था, उतना ही कठोर भी। सुबह की परेड, घंटों का अभ्यास, अनुशासन और जिम्मेदारियों ने उसके भीतर समय से पहले ही परिपक्वता भर दी थी।

उन दिनों उसकी तैनाती आगरा छावनी में थी। गर्मियों की दोपहरें आग बरसाती थीं, लेकिन जवानों के कदम कभी नहीं रुकते थे। पूरे सप्ताह कठिन प्रशिक्षण के बाद शुक्रवार की शाम उनके लिए किसी त्योहार से कम नहीं होती थी। छुट्टी मिलते ही हर कोई अपने घर की ओर दौड़ पड़ता। उनके सफर की सबसे भरोसेमंद साथी थी तूफान एक्सप्रेस। वह ट्रेन हजारों सैनिकों को उनके परिवारों तक पहुंचाती आ रही थी। रेलवे स्टेशन पर हर शुक्रवार एक अलग ही दृश्य होता। प्लेटफॉर्म पर हरी और खाकी वर्दियों की भीड़, कंधों पर बैग, हाथों में पानी की बोतलें और चेहरों पर घर पहुंचने की चमक साफ दिखाई देती थी।

उस दिन भी मिलिट्री कोच यात्रियों से पूरी तरह भरा हुआ था। बैठने की जगह मिलना किसी सौभाग्य से कम नहीं था। कई जवान अपने बैगों पर बैठे थे, कुछ फर्श पर और कुछ सीटों के नीचे भी किसी तरह जगह बनाकर बैठे थे। हवा का गुजरना तक मुश्किल हो रहा था। फिर भी किसी के चेहरे पर शिकायत नहीं थी। सबके मन में केवल एक ही इच्छा थी कि किसी तरह सुबह तक अपने घर पहुंच जाएं।

ट्रेन धीरे धीरे अपनी रफ्तार पकड़ चुकी थी। शाम रात में बदल रही थी। खिड़की के बाहर अंधेरा फैलने लगा था। पहियों की लगातार चलती आवाज और पटरियों की लय मानो कोई मधुर संगीत बन गई थी। थके हुए जवान एक एक कर ऊंघने लगे।

टूंडला स्टेशन पार करते ही अचानक डिब्बे की शांति एक तेज आवाज से टूट गई।

"तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मुझे हाथ लगाने की?"

आवाज इतनी तीखी थी कि पूरे डिब्बे की नींद गायब हो गई। सभी की नजरें एक ही दिशा में उठ गईं। वहां एक युवा महिला गुस्से और अपमान से कांप रही थी।

उसकी आंखों में आंसू थे, लेकिन उनमें डर नहीं था। वह भी एक सैनिक की पत्नी थी। उसने आरोप लगाया कि भीड़ और अंधेरे का फायदा उठाकर एक जेसीओ ने उसके साथ अनुचित व्यवहार किया है।

जिस व्यक्ति पर आरोप था, वह नशे में दिखाई दे रहा था। उसके कंधों पर चमकते रैंक और चेहरे पर अहंकार साफ झलक रहा था। गलती स्वीकार करने

के बजाय उसने व्यंग्य से कहा, "तुम कोई इंद्रलोक की अप्सरा हो, जो मैं तुम्हें छेड़ूंगा?"

उसके शब्द पूरे डिब्बे में गूंज गए। कई जवानों के चेहरे शर्म और असहजता से झुक गए, लेकिन किसी ने कुछ नहीं कहा। सेना का अनुशासन और रैंक का दबाव सबकी जुबान पर ताला लगा चुका था।

महिला का पति भी वहीं खड़ा था। वह एक साधारण जवान था। उसकी आंखों में अपमान, क्रोध और विवशता एक साथ दिखाई दे रही थी। उसकी मुट्ठियां कस गई थीं, लेकिन वह जानता था कि सामने उससे कहीं ऊंचे पद का अधिकारी खड़ा है।

कुछ क्षण बाद वह धीरे से अविनाश के पास आया और भर्राए स्वर में बोला, "मैं अपने से ऊंचे रैंक वाले से कैसे लड़ूं?"

उस एक वाक्य ने अविनाश के भीतर गहरी चोट पहुंचाई। उसे पहली बार महसूस हुआ कि कभी कभी वर्दी पहनने वाला भी परिस्थितियों का कैदी बन जाता है। नियम और अनुशासन कभी कभी इंसान की आवाज भी छीन लेते हैं।

इसी बीच उसकी नजर उस जेसीओ की पत्नी पर गई। वह बेहद शांत बैठी थी। उसके चेहरे पर न शर्म थी, न विरोध, न समर्थन। केवल गहरा मौन था। उसकी आंखों में ऐसी थकान थी, जैसे जीवन ने उससे बहुत पहले बोलने का अधिकार छीन लिया हो। वह चुप थी, लेकिन उसकी चुप्पी बहुत कुछ कह रही थी। ऐसा लग रहा था मानो उसने इस तरह की घटनाओं को जीवन का हिस्सा मान लिया हो।

कुछ वरिष्ठ जवानों ने बीच बचाव किया। मामला धीरे धीरे शांत हो गया। किसी ने कहा कि सफर लंबा है, विवाद बढ़ाने से किसी का भला नहीं होगा। धीरे धीरे फिर वही सन्नाटा लौट आया। थके हुए लोग अपनी जगहों पर बैठकर सोने लगे।

अविनाश भी सीट के किनारे सिकुड़कर बैठ गया। खिड़की से आती हवा अब ठंडी लग रही थी। उसकी आंखें भी भारी होने लगीं। पता नहीं कितनी देर बीत गई।

अचानक उसकी नींद खुली। उसने देखा कि जिस जेसीओ पर आरोप लगा था, वह वहां नहीं था। शायद किसी दूसरे डिब्बे में चला गया था। आसपास लगभग सभी लोग गहरी नींद में थे। उसी समय उसे अपनी जांघ पर हल्का सा भार महसूस हुआ। उसने धीरे से नीचे देखा।

जेसीओ की पत्नी अनजाने में उसकी ओर सरक आई थी। भीड़ के कारण जगह बदलते बदलते उसका सिर अविनाश की जांघ पर टिक गया था। वह गहरी और निश्चिंत नींद में सो रही थी। उसके चेहरे पर पहली बार शांति दिखाई दे रही थी।

क्षण भर के लिए अविनाश का पूरा शरीर जैसे थम गया। जीवन में पहली बार किसी स्त्री का इतना निकट सान्निध्य उसे मिला था। लेकिन उसके मन में आकर्षण का कोई भाव नहीं आया। उसे केवल यही लगा कि यह स्त्री नींद में नहीं, बल्कि विश्वास में उसके पास आकर ठहरी है।

उसने अपने दोनों हाथ घुटनों पर रख लिए और मन ही मन निश्चय किया कि चाहे उसके पैर सुन्न हो जाएं, कमर में दर्द होने लगे या पूरी रात इसी तरह बैठना पड़े, वह अपनी जगह से नहीं हिलेगा। उसकी जरा सी हरकत उस गहरी नींद को तोड़ सकती थी, जो शायद लंबे समय बाद उसे मिली थी।

बाहर रात अपने पूरे विस्तार में फैली हुई थी। पेड़ अंधेरे में पीछे भागते दिखाई दे रहे थे। ट्रेन लगातार आगे बढ़ रही थी। भीतर अविनाश बिल्कुल स्थिर बैठा था। समय मानो थम गया था। उसे महसूस हुआ कि किसी की रक्षा करने के लिए हमेशा हथियार उठाना जरूरी नहीं होता। कभी कभी केवल अपनी मर्यादा और संवेदना पर अडिग रहना ही सबसे बड़ी सुरक्षा बन जाता है।

धीरे धीरे उसके पैर सुन्न पड़ने लगे। कमर में दर्द उठने लगा। गर्दन अकड़ गई। फिर भी उसने अपनी स्थिति नहीं बदली। उसे लग रहा था कि यदि वह जरा भी हिला तो किसी टूटे हुए मन की यह दुर्लभ शांति बिखर जाएगी। वह पूरी रात एक मौन प्रहरी की तरह बैठा रहा। उसकी आंखों में नींद थी, लेकिन उससे कहीं अधिक जाग रही थी उसकी इंसानियत।

आखिर कब उसकी भी आंख लग गई, उसे पता ही नहीं चला।

सुबह जब उसकी नींद खुली तो ट्रेन इलाहाबाद से काफी आगे निकल चुकी थी। सूरज की हल्की किरणें खिड़की से भीतर आ र ही थीं। डिब्बे में फिर चहल पहल शुरू हो गई थी। उसने अपने पैरों को हिलाने की कोशिश की तो वे पूरी तरह सुन्न थे।

उसने घबराकर बगल में देखा।

वह जगह खाली थी।

वह महिला न जाने किस स्टेशन पर उतर चुकी थी। उसने न कोई धन्यवाद कहा, न कोई परिचय दिया, न पीछे मुड़कर देखा। शा यद उसे यह भी याद न रहा हो कि रात के अंतिम पहर उसका सिर किसकी जांघ पर टिका था। वह जैसे आई थी, वैसे ही भीड़ में खो गई।

लेकिन अविनाश के भीतर कुछ हमेशा के लिए बदल चुका था।

वर्षों बाद भी जब वह उस रात को याद करता है तो उसे न वह विवाद याद आता है, न जेसीओ का अहंकार, न भीड़ का शोर। उ से केवल वह निश्चिंत चेहरा याद आता है, जो पहली बार बिना किसी भय के सो पाया था। उसे महसूस होता है कि इंसान की अ सली पहचान उसके पद, रैंक या अधिकार से नहीं होती। उसकी पहचान उस विश्वास से होती है, जो कोई अनजान व्यक्ति सबसे असुरक्षित क्षण में उस पर कर सके।

उस रात अविनाश ने जाना था कि सच्ची वीरता केवल सीमा पर दुश्मन से लड़ने में नहीं होती। कभी कभी वह किसी टूटे हुए विश्वा स की रक्षा करने में होती है। किसी अनजान की गरिमा बचाने में होती है। बिना एक शब्द बोले पूरी रात किसी के भरोसे की पहरे दारी करने में होती है। वही पहरेदारी उसके सैनिक जीवन का सबसे बड़ा सम्मान बन गई, क्योंकि उस रात उसने केवल एक स्त्री की नींद की रक्षा नहीं की थी, बल्कि अपने भीतर बसे मनुष्य को भी जीवित रखा था।